भाषा | साहित्य | संस्कृति

प्रश्नचिह्न

आग है तुम्हारे स्पर्श में,
पलाश-सा लाल,
उजास है
नर्म हवाओं के बीच खिलता,
एक मौन जो शोर मचाता है।

- अरविन्द श्रीवास्तव

वर्ष :02, अंक:15, जून 2025

9 789334 311051

आवरण- प्रतिभा मिश्र इंदौर

संपादक : आलोक रंजन

भाषा | साहित्य | संस्कृति

प्रश्नचिह्न

जून 2025 । पंद्रहवां अंक

प्रबंध सम्पादक:
प्रवीन कुमार 'प्रणय'

प्रबंध सहयोग:
पीयूष पुष्पम

आवरण: प्रतिभा मिश्र इंदौर
रेखांकन: दीया शर्मा

सम्पादक
आलोक रंजन

अक्षर संयोजन
अदिति झा

प्रश्नचिह्न में प्रकाशित रचनाओं का सर्वाधिकार रचनाकारों के अधीन सुरक्षित है। प्रश्नचिह्न में प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचार, तथ्य लेखकों के अपने हैं। प्रश्नचिह्न में प्रकाशित रचनाओं के लिए प्रश्नचिह्न पत्रिका समूह का सहमत होना आवश्यक नहीं है और न ही पत्रिका इसके लिए उत्तरदायी है।

वार्षिक मूल्य :

व्यक्तियों के लिए-	600.00 रुपये
संस्थाओं और पुस्तकालयों के लिए-	1500.00 रुपये
विदेशों में-	$25

एक प्रति का मूल्य :

व्यक्तियों के लिए-	50.00 रुपये
संस्थाओं के लिए-	100.00 रुपये
विदेशों में-	$10

विज्ञापन दरें :

बाहरी कवर-	20,000.00 रुपये
अन्दर कवर-	15,000.00 रुपये
अन्दर पूरा पृष्ठ-	10,000.00 रुपये
अन्दर का आधा पृष्ठ-	7,000.00 रुपये

संपादकीय कार्यालयः

8/54 - ए, प्रथम तल, डबल स्टोरी,
विजय नगर, दिल्ली - 110009
मोबाइल : 9155113056

ई-मेलः prashanchinha.patrika@gmail.com
infoprashanchinha.patrika@gmail.com

वेबसाईटः https://prashanchinhapatrika.blogspot.com

फेसबुकः https://www.facebook.com/prasnacihnapatrika

इंस्टाग्रामः https://www.instagram.com/prashanchinha.patrika

अनुक्रम

सम्पादकीय

कविताएँ

अरविन्द श्रीवास्तव, मालिनी गौतम, इमतियाज गदर, वीरेन्द्र नारायण झा, डॉ. वर्षा महेश 'गरिमा'

व्यंग्य

डॉ. मुकेश गर्ग 'असीमित'

रेखा शाह आरबी

कहानियाँ

शोभा गोयल

डॉ. तौसीफ़ बरेलवी

समीक्षा

दीपक गिरकर

युवराज खटीक

विविध

रिपोर्ट

सड़क किनारे सशक्तिकरण

भारत में आज भी बड़ी संख्या में लोग असंगठित क्षेत्र में काम करते हैं। इन क्षेत्रों में न पेंशन है, न स्वास्थ्य बीमा, न ही सामाजिक सुरक्षा। नतीजा यह होता है कि रिटायरमेंट जैसी कोई परिभाषा इन मजदूरों के जीवन में नहीं होती। जब तक शरीर साथ देता है, तब तक काम। और जब शरीर जवाब दे जाए, तब या तो कर्ज़, या फिर परित्याग। चित्र में दिखाई देती एक वृद्ध महिला मात्र एक फल विक्रेता नहीं हैं —वह उस अदृश्य शक्ति की प्रतीक हैं जो हमारे समाज की नींव है। एक सड़क के किनारे बैठी यह स्त्री, न केवल जामुन तौल रही है, बल्कि अपने आत्मसम्मान, श्रमशीलता और अस्तित्व के अधिकार को भी समाज के समक्ष तौल रही है।

हर शहर, हर कस्बा और हर बाज़ार में हम एक आम दृश्य देखते हैं—सड़क किनारे बैठी बुज़ुर्ग महिलाएँ या पुरुष, फल बेचते, मूंगफली तौलते, या छोटे-मोटे सामान का व्यापार करते हुए। इन झुकी हुई पीठों, कांपते हाथों और झुर्रियों में सजी इन मुस्कानों के पीछे छिपी होती है एक बहुत बड़ी कहानी—कभी मजबूरी की, कभी आत्मसम्मान की, और अक्सर व्यवस्था की चुप असफलता की।

प्रगतिशील दृष्टिकोण से देखें तो यह दृश्य उस नारी की कहानी कहता है जो सीमाओं को स्वीकार नहीं करती, जो उम्र के तथाकथित बंधनों को नकारते हुए आज भी आत्मनिर्भर बनी हुई है। आर्थिक स्वतंत्रता और श्रम के माध्यम से वह महिला एक जीवंत उदाहरण बनती है कि सशक्तिकरण केवल कॉर्पोरेट दफ्तरों, उच्च शिक्षण संस्थानों या मंचों की बात नहीं है; वह रोज़मर्रा की ज़िंदगी में भी सांस लेता है, पसीना बहाता है, और अपने अधिकार स्वयं गढ़ता है।

निस्संदेह, किसी भी उम्र में काम करना यदि स्वेच्छा से हो तो यह आत्मनिर्भरता का प्रतीक है। ऐसे बुज़ुर्गों की मेहनत हमें यह सिखाती है कि जीवन कभी रुकता नहीं। वे अपनी सीमित शारीरिक शक्ति के बावजूद खुद पर निर्भर रहना चाहते हैं। यह आत्मसम्मान का साहसिक रूप है। लेकिन सवाल यह है क्या वे सच में 'स्वेच्छा' से यह काम कर रहे हैं? या यह मज़बूरी है? इस वृद्ध महिला का कार्य एक मौन प्रतिरोध है उन सामाजिक ढांचों के विरुद्ध जो महिलाओं को "घरेलू" कहकर परिभाषित करते हैं।

यह दृश्य हमें याद दिलाता है कि भारतीय समाज की सबसे बड़ी ताकत उन महिलाओं में है, जो बिना किसी प्रचार के, बिना किसी मंच के, अपने परिश्रम से न केवल अपना जीवन जी रही हैं, बल्कि आने वाली पीढ़ियों के लिए उदाहरण भी बन रही हैं। प्रश्नचिह्न पत्रिका का यह जून अंक इसी विमर्श को आगे बढ़ाता है। यह अंक उन स्त्रियों को समर्पित है जो खेतों में, बाज़ारों में, सड़कों पर, और अपने-अपने जीवन संघर्षों में हर दिन श्रम करती हैं, रचती हैं, और बदलाव की नींव रखती हैं।

एक और महत्वपूर्ण पक्ष है पारिवारिक ज़िम्मेदारियों और बदलते सामाजिक मूल्यों का। पहले संयुक्त परिवारों में बुज़ुर्गों की देखभाल एक नैतिक दायित्व मानी जाती थी। लेकिन आज एकल परिवारों, आर्थिक दबावों और बदलती प्राथमिकताओं ने बुज़ुर्गों को अक्सर अकेला छोड़ दिया है। वे या तो अपने सम्मान की रक्षा के लिए काम करते हैं, या दो वक्त की रोटी जुटाने के लिए। क्या हमारी सरकारें इस वर्ग की ज़रूरतों को समझ पा रही हैं? वरिष्ठ नागरिकों के लिए चलाई गई योजनाएँ कागज़ पर तो सजीव हैं, लेकिन जमीनी हकीकत कुछ और कहती है। पेंशन पाने की प्रक्रियाएँ जटिल हैं, लाभ योजनाएँ पहुँच से बाहर, और सामाजिक सुरक्षा केवल भाषणों तक सीमित।

सड़क किनारे बैठा एक बुज़ुर्ग जब अपने कांपते हाथों से तराजू थामता है, तो वह केवल फल नहीं तौल रहा होता—वह उस व्यवस्था को तौल रहा होता है, जो उसे इस उम्र में भी काम करने पर विवश कर रही है। आज जब हम लैंगिक समानता और महिला सशक्तिकरण की बात करते हैं, तब यह ज़रूरी हो जाता है कि हम सिर्फ नारों तक सीमित न रहें, बल्कि उन ज़मीनी महिलाओं को भी पहचानें जो असल बदलाव की वाहक हैं।

आपका-

आलोक रंजन

alokranjanoffice@gmail.com

प्रेम में पलाश

आग है तुम्हारे स्पर्श में,
पलाश-सा लाल, उजास है
नर्म हवाओं के बीच खिलता,
एक मौन जो शोर मचाता है

बादल-सी छाई तुम्हारी बातें
बूंदों में सपने-सा
मैं मिट्टी, तू बारिश बनकर,
हर रिक्त को भर जाते

कभी दूरी, लकीरें खींचे,
कभी पास, सांसें भींचे
पलाश की तरह, प्रेम हमारा,
जलता सुर्ख़ लाल

तेरे बिना अधूरी कविता,
तेरे साथ हर शब्द संगीत सा
पलाश बनकर तुम पास आये,
मुझमें रंग- बसंत सा !

अरविन्द श्रीवास्तव

सम्पर्क: कुटीर, वार्ड नं.- 17,
मधेपुरा- 852113., बिहार
ईमेल : srivastavaarvind114@gmail.com

मैं खामोशी से इंतज़ार करूंगा

तुम्हारे लिए
जैसे सर्द रात में चाँदनी बिछती है
कोहरे की चादर
धीरे-धीरे, बिना शोर

हवाओं में तलाशूंगा तुम्हारी खुशबू
हर सांस में थोड़ा और खो जाऊंगा,
थम जाएंगी वक्त की सुई
और मैं खामोशी से इंतज़ार करूंगा

तुम्हारी कदमों की आहट है यही
कहीं
गुनगुनाती हैं धड़कनें मेरी
शायद ये इश्क़ है, शायद ये जुनून,
या एक अनकही उम्मीद का सुकून

कोई वादा नहीं, नहीं कोई शर्त
बस एक चाहत
तुम आओगी, और मैं
खामोशी से करूंगा इंतज़ार।